Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 13, Issue 2 | November 2025 - April 2026 | pp. 36-41

मनुस्मृति में चित्रित स्त्री—एक अनुशीलन

मुरलीधर गुर्जर
सहायक आचार्य, संस्कृत
बाबा नारायण दास राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा (शाहपुरा), जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

यह शोध-पत्र मनुस्मृति के आधार पर प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति, अधिकारों, कर्तव्यों तथा सामाजिक भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। मनुस्मृति, भारतीय धर्मशास्त्रीय परंपरा का महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है, जिसमें सामाजिक-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था तथा पारिवारिक जीवन के नियम-निर्देश निर्धारित किए गए हैं। इस अध्ययन में विशेष रूप से यह देखा गया है कि मनुस्मृति स्त्री को किस दृष्टि से देखती है तथा उसके जीवन के विभिन्न पक्षों—जैसे शिक्षा, विवाह, मातृत्व, धार्मिक-अधिकार, सामाजिक-आर्थिक स्वतंत्रता आदि को किस प्रकार परिभाषित करती है। शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि संस्कृत वाङ्मय में स्त्री को शक्तिस्वरूपा, मातृस्वरूपा एवं पूज्या कहा गया है। तत्कालीन सामाजिक-पारिवारिक जीवन में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। मनुस्मृति में स्त्री के विभिन्न अधिकारों एवं कर्तव्यों का भी विशद् विवेचन किया है। मनुस्मृति स्त्री को परिवार और समाज की आधारशिला मानते हुए उसे सम्मान देने की बात करती है, किन्तु साथ ही उसकी स्वतंत्रता पर अनेक प्रतिबंध भी लगाती है। ग्रंथ में स्त्री को पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में रहने योग्य बताया गया है, जिससे तत्कालीन पितृसत्तात्मक व्यवस्था का संकेत मिलता है। अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि मनुस्मृति में स्त्री की छवि सम्मान और नियंत्रण—दोनों के मिश्रित रूप में प्रस्तुत हुई है। साथ ही, ग्रंथ में स्त्री के सम्मान और उसकी सुरक्षा पर भी विशेष बल दिया गया है। यह शोध प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति को समझने की दिशा में महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है।

संकेताक्षर—*गृहिणी, सुमङ्गली, अर्द्धनारीश्वर, मातृस्वरुपा, जायात्व*

प्रस्तावना

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में स्त्री के उत्कृष्ट जीवन का चित्रण मिलता है। संस्कृत साहित्य नारी को परिवार की धुरी, शक्ति स्रोत और पूजनीय मानता है, जहाँ उसका सम्मान ही कुल की उन्नति का आधार कहा गया है। ऋग्वेद में लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्ववारा जैसी विदुषी ऋषिकाओं का उल्लेख है, जो मन्त्रों की ज्ञाता थीं। वेदों में स्त्री को 'जाया' (जिसमें पति पुनर्जन्म लेता है) के रूप में अत्यन्त सम्मानजनक स्थान मिला है। गृहस्थ जीवन में स्त्री का स्थान सर्वोच्च रहा है। गृहिणी के रूप में वह घर का प्रबंधन करती थी। माता के रूप में नारी को 'स्वर्गादपि गरीयसी' (स्वर्ग से भी बढ़कर) कहा गया है। वेदों में पत्नी के रूप में स्त्री को अत्यंत आदर-सम्मान दिया गया है। ऋग्वेद के सूर्य सूक्त (10.85) में वर्णित सूर्या-विवाह, हिंदू विवाह का प्रतीक ही बन गया है। इस सूक्त में विवाह की प्रक्रिया को एक अत्यंत पवित्र सामाजिक और आध्यात्मिक बंधन के रूप में स्थापित किया गया है। इस सूक्त के एक मंत्र में विवाह के अवसर पर पति अपनी भावी पत्नी से यह वचन करता है कि मैं तुम्हारा पाणिग्रहण अपने सौभाग्य के लिए करता हूँ। वह इस मंत्र में अपनी पत्नी के लिए देवताओं से कामना करता है कि वह गृहस्थाश्र में साथ जीवन जीते हुए उसका वृद्धावस्था तक साथ निभाएगी-

"गृभ्णामि ते सौभगस्त्वाय हस्तं मया पत्या जरदिष्ठिर् रथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर मह्यं त्वादुर्गार्ह पत्याय देवाः॥"[1]

स्त्री, गृहिणी के रूप में धर्माधर्म का निर्णय करती थी। गृहिणी के रूप में वह दाम्पत्य-जीवन में मधुर रस भरने का काम करती है। यही कारण है कि वेदों में परिवार का दायित्व ग्रहण करने के लिए उद्यत नवोढा को परिवार की सम्राज्ञी बनने का शुभ आशीर्वाद दिया है। "सम्राज्ञी श्वसुरे भव....।"[2] वह दाम्पत्य जीवन में पुरुष की सहचरी रूप में साथ निभाती है। अतः विवाह-अवसर पर सिन्दूर दान करते समय उसे सुमङ्गली कहा गया है और उसको सौभाग्य प्रदान करके उसका दुर्भाग्य दूर करने की प्रार्थना की गई है—

"सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्मै दत्वा दौर्भाग्यै विपरेतन॥"[3]

नारी को शिवा, कल्याणी, पुरन्ध्रि अर्थात् समाज की नेतृत्वकर्त्री कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है "अयज्ञियो ह वा एषः योऽपत्नीकः।" अर्थात् जिस पुरुष की पत्नी ना हो, उसे यज्ञ करने का अधिकार नहीं है।" पत्नी को यज्ञ-अधिकार प्राप्त होना, इस बात को प्रमाणित करता है कि तत्कालीन समाज में स्त्री को पूर्ण अधिकारों के साथ सामाजिक-पारिवारिक जीवन में महत्वपूर्ण एवं समानाधिकार प्राप्त थे।

मनुस्मृति के आलोक में स्त्री

संस्कृत वाङ्मय में स्त्री को शैव दर्शन में शक्तिस्वरूपा, सांख्य दर्शन में प्रकृतिस्वरूपा और वेदांत में संसार की सृष्टि, स्थिति और विनाशकर्त्री के रूप में वर्णित किया गया है, जिसके बिना न ब्रह्मा, ब्रह्मा है; न विष्णु, विष्णु है तथा न शिव, शिव हैं। भारतीय संस्कृति में स्त्री को मातृस्वरूपा मानकर उसका आदर किया गया है। महर्षि मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि जहाँ स्त्री की पूजा होती है अर्थात् उसका सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं, रमण करते हैं और जहाँ इनका अनादर, तिरस्कार होता है, वहाँ यज्ञादि सभी पुण्यकर्म भी निष्फल ही होते हैं—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राऽफला क्रियाः॥"[4]

जगत्पिता सर्वशक्तिमान् ब्रह्मा ने अपने ही शरीर को दो भाग में विभाजित करके अर्ध भाग में पुरुष एवं अर्ध भाग में स्त्री स्वरूप धारण किया और उस नारी स्वरूप में विराट् पुरुष को उत्पन्न किया-

"द्विधा कृत्वाऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः॥"[5]

इस प्रकार त्याग, तपस्या, वात्सल्य, सत्यवादिता, औदार्य, दाक्षिण्यादि गुणों को धारण करके उनकी शोभा बढ़ाने वाली तथा भारतीय सभ्यता-संस्कृति की संरक्षक एवं अतिथि-सत्कार की प्रतिमूर्ति स्वरूपा स्त्री अर्द्धनारीश्वर का अभिन्न हिस्सा रही है और है। साथ ही, सन्यास आश्रम को छोड़कर शेष तीनों ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम एवं वानप्रस्थाश्रमों में भी स्त्रियों का पुरुषों की भाँति समान महत्व था। कन्याएं भी ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करती थी और गृहस्थाश्रम के लिए युवक-पति की प्रार्थना करती थी—

"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।"[6]

सम्पूर्ण कुटुम्ब का पालन करने एवं कुटुम्बधारण करने के कारण ही स्त्री को कुटुम्बिनी अथवा गृहपत्नी कहा जाता है। सामान्यतः प्राचीनकाल में स्त्री-पुरुष को लगभग समान अधिकार प्राप्त थे, विशेषकर संपति का अधिकार, यज्ञाधिकार एवं आय-व्यय तथा अर्थसंग्रह का अधिकार। इस संबंध में मनु स्पष्ट रूप से कहते हैं—

"अर्थस्य संग्रहे चैनां, व्यये चैव नियोजयेत्।
मातुः यौतुकधने कुमार्या एवाधिकारः॥"[7]

भारतीय संस्कृति में स्त्री को जो मातृस्वरूपा सम्मान दिया गया है, वह मातृत्वस्वरूप सम्मान अन्य सभी सम्मानों को तिरस्कृत करता है। "आदि युग से लेकर आज तक मानव जिसे असीम श्रद्धा भेंट करता रहा है और जिससे अजस्त्र, अक्षय स्नेह पाता रहा, वह केवल जन्मदात्री नहीं, वह इससे भी बहुत बड़ी है। उसका स्थान स्वर्ग से भी ऊँचा और गुरु से भी अधिक पूज्य है।"[8] मनु ने कहा भी है कि उपाध्यायों से दशगुणा श्रेष्ठ आचार्य होता है तथा आचार्य से सौ गुणा श्रेष्ठ पिता होता है। परन्तु माता, पिता से भी एक हजार गुणा श्रेष्ठ होती है—

"उपाध्यायात् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥"[9]

मनु कहते हैं कि किसी को भी आचार्य, प्रवक्ता, माता-पिता, गुरु आदि को दुःख देने वाला आचरण नहीं करना चाहिए-

"आचार्यं च प्रवक्तार पितर मातरं गुरुम्।
न हिंस्याद् ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः॥"[10]

स्त्री का महिला सम्बोधन ही उसकी महिमा को व्यक्त करता है, जो मह तेज से युक्त हो और उत्सवों की जननी हो। मनु का कथन है कि स्त्रियों का नाम सुखपूर्वक उच्चारण करने योग्य,

अक्रूर और स्पष्ट अर्थ वाला, आदरणीय, मनोहर, मङ्गलसूचक, दीर्घस्वरवर्णान्त एवं आशीर्वाद से युक्त अर्थ वाला होवे—

"स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम्।
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्॥"[11]

वेद भी सबसे पहले 'मातृ देवो भव' कहते हैं तथा उसके बाद 'पितृ देवो भव' एवं 'आचार्यः देवो भव' कहा गया है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इत्यादि वैदिक वाक्य के अनुसार पति स्वयं ही पत्नी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न होता है। इससे स्त्री-महत्ता परिलक्षित होती है और यही बात आचार्य मनु ने भी कही है कि पति वीर्य/तेज रूप में पत्नी रूपी स्त्री में प्रवेश करके गर्भस्थ होकर पुत्र रूप में पुनः उत्पन्न होता है, जाया का यही जायात्व है अर्थात् स्त्री का यही स्त्रीत्व है, जो पुरुष इसमें पुनः उत्पन्न होता है-

पतिभार्यां संप्रविश्य, गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं, यदस्यां जायते पुनः॥[12]

अतः नारी के सम्मान एवं सुख का पुरुष को सर्वत्र ध्यान रखना चाहिए। मनु ने इसी आशय से कहा है कि जिस कुल में जामियाँ अर्थात् स्त्री पुत्रवधू, बहन, पत्नी कन्या आदि शोक व्यक्त करती हैं, दुःखी रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जिस कुल ये जामियाँ शोक नहीं करती हैं, सदैव प्रसन्नचित्त रहती हैं, वह कुल सर्वदा उन्नति ही करता है—

"शोचन्ति जामयो यत्र, विनशयत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥"[13]

स्त्रियों की प्रसन्नता में ही कुल और समाज का सुख-समृद्धि निहित है। यही बात मनु भी कहते हैं कि स्त्री के प्रसन्नचित्त एवं स्वगृह में संतुष्ट रहने से वह कुल/परिवार भी प्रसन्नचित्त एवं समाज में सुशोभित होता है और स्त्री के रुष्ट रहने और स्वगृह में असंतुष्ट एवं अरुचि रखने वाली होने पर उस कुल में सबकुछ मलिन ही हो जाता है, वह परिवार भी प्रसन्न नहीं रहता है—

"स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥"[14]

साथ ही, मनु कहते हैं कि जिस कुल या परिवार में भार्या से भर्ता और भर्ता से भार्या संतुष्ट एवं प्रसन्नचित्त रहती है, उस कुल में अवश्य ही नित्य कल्याण होता है—

"सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥"[15]

जिस कुल में भर्ता एवं भार्या परस्पर प्रसन्न रहते हैं, उस कुल में सर्वदा सुख-शान्ति का निवास रहता है। ऐसे दम्पती गृहस्थाश्र का सुष्ठु पालन करते हैं। गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों का आधार है एवं सभी आश्रमों में श्रेष्ठ है।

यद्यपि प्रायः साहित्य में अनेकशः 'न स्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति' यह भावार्थ अभिव्यक्त किया गया है। इसी भाव को स्वयं मनु ने भी व्यक्त किया है और इस कथन के भाव की पुनरावृत्ति करते हुए कहा है कि पुरुष स्त्रियों को अहर्निश अपने अधीन रखें, उनकी देखभाल करें, उन्हें स्वाधीन न रहने देवें—

"अस्वतंत्र्याः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम्।"[16]

परन्तु यह कथन निश्चित रूप से स्त्री-सुरक्षा/स्त्रीरक्षण से ही सम्बन्धित रहा है। यहाँ स्त्रियों की स्वतन्त्रता को बाधित करने का अभिप्राय ना होकर उनके लिए मर्यादा का निर्धारण किया गया है। स्त्री को विशिष्ट मानते हुए ही यह कथन उक्त हुआ है। इसी स्त्रीरक्षण के भाव को महर्षि मनु ने कहा भी है कि स्त्री की रक्षा कौमार्य/बचपन में पिता, यौवनकाल में पति और वृद्धावस्था में पुत्र करता है, स्त्री स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं है-

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थावरे पुत्रा, न स्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति॥" एवं
"बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्, पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम्॥"[17]

मनु ने स्पष्ट रूप से स्त्रीरक्षण के लिए भी कहा है कि स्त्री की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए- "......स्त्रियं रक्षेत् प्रयत्नतः।"[18] मनु ने स्त्री को स्वतन्त्र न मानते हुए भी उसे पूज्या कहा है। वैदिक वाङ्मय में वर्णित षोडश-संस्कारों का केंद्र नारी ही है क्योंकि गर्भाधान संस्कार से लेकर वानप्रस्थ संस्कार पर्यन्त सभी संस्कारों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री की महत्ता वर्णित है। स्मृतिशास्त्र में स्त्री को विधाता की अनुपम सृष्टि कहा गया है। वह कोमल, सरस, धैर्यशालिनी और ममत्व की मूर्ति है। मनु, स्त्री के संस्कार के विषय में पक्षपातपूर्ण भावना-विचार रखते हैं। वह कहते हैं कि स्त्री का विवाह-संस्कार तो वैदिक विधि से मन्त्रोच्चारण के साथ सम्पन्न हो, परन्तु स्त्रियों के अन्य सभी संस्कार बिना मंत्रों के ही सम्पन्न हों—

"अमन्त्रिका तु कार्येय स्त्रीणामावृदशेषतः।" एवं "वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिक स्मृतः।"[19]

जबकि पुरुष के लिए सभी संस्कारों का विधान मन्त्रोच्चारण सहित किया है और स्त्री के लिए केवल विवाह-संस्कार। मेधातिथि ने भी कहा है- "विवाह एवं स्त्रीणां वैदिकः संस्कार स्मृतः।" अर्थात् विवाह ही स्त्रियों का वैदिक उपनयन संस्कार है। गृहस्थ आश्रम के प्रवेश सोपानस्वरूप विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच आठ प्रकार के बताए गए हैं। इनमें प्रथम चार विवाह-प्रकार को मनु ने प्रशस्त बताया है और इन चार विवाहों से उत्पन्न संतान ही क्रमशः ब्रह्मतेजयुक्त और सज्जनों से माननीय शिष्ट होती है। विवाह के आठ प्रकार में से प्रारंभिक छः को मनु ने धर्मयुक्त कहा है, परंतु अंतिम दो अर्थात् राक्षस और पैशाच को वर्ज्य बताया है—

"पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन।"[20]

उक्त दोनों विवाह में स्त्री का मान-मर्दन होता है एवं उसकी इच्छा/अनिच्छा का कोई मतलब नहीं रह जाता है, अतः यह दोनों विवाह बलात्कार की श्रेणी में आते हैं। विवाह-सम्बन्ध में कन्या के विषय में भी मनु कहते हैं कि द्विज को सवर्णकन्या से ही विवाह करना चाहिए, जो माता के सपिण्ड में न हो और पिता की सगोत्रा न हो। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को सवर्णा कन्या नहीं मिलने की स्थिति में भी शूद्रा को कभी भी अपनी पत्नी नहीं बनाना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि मनु अन्तर्जातीय विवाह के पक्षधर नहीं हैं। मनु ने पतिव्रता स्त्री के लिये विधवा विवाह का निषेध किया है—

"न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः।" एवं
"न द्वितीयं य नारीणां क्वचिद् भर्त्तोपदिश्यते.।"[21]

मनु के अनुसार कन्या के पिता को कन्यादान के लिये वरपक्ष से जरा-सा भी धन नहीं लेना चाहिए। जो पिता या पति स्त्रीधन से जीवननिर्वाह करते हैं, वे पाप के भागी बनते हैं।

स्त्री के लिए पति की सेवा एवं पतिगृह का हित ही सर्वस्व है और उसी से पत्नी को स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। जैसा कि शास्त्र में उक्त भी है—

नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नास्त्युपोषणम्।
पतिंशुश्रूषते येन तेन स्वर्गं महीयते॥

मनु के अनुसार स्त्री के लिए पतिसेवा ही गुरुकुलवास है तथा गृहकार्य ही नित्य हवन है, गृहस्थाश्रम ही गुरुकुल है एवं मातृरूप में वह, उस गुरुकुल की कुलपति है—"पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥"[22] जो मन, वचन तथा कर्म से पति-विरुद्ध आचरण नहीं करती है, सज्जन उसे पतिव्रता नारी कहते हैं, वह स्त्री साध्वी है—

"पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयुता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥"[23]

स्त्री को सम्मान देने एवं सामाजिक जीवन में उसे उच्च स्थान देते हुए मनु कहते हैं कि मौसी, मामी, सास और बुआ, बड़ी बहन को गुरु पत्नीवत् पूज्य माने और इनको माँ के समान माने, पर माँ को इनसे भी श्रेष्ठ मानना चाहिए—

"पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि।
मातृवद् वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी॥"[24]

मनु ने स्त्री को महत्त्व देते हुए बताया है कि रथी, अतिवृद्ध, रोगी, भारवाहक, स्नातक, राजा एवं स्त्रियों को मार्ग देना चाहिए। चूँकि 'अतिथि देवो भव' के धर्मशास्त्रीय वाक्यानुसार सर्वप्रथम गृह में पधारे हुए अतिथि को भोजन कराकर ही गृहस्थ स्वयं भोजन करे, ऐसा विधान है, परंतु मनु के अनुसार नवविवाहिता वधू (पुत्रवधू/पुत्री), कुमारी/अविवाहित कन्या, रोगी और गर्भवती स्त्री—इन सबको बिना अन्यथा विचारे ही अतिथि से भी पहले भोजन कराएं।

मनु ने स्त्रीहरण करने वाले के लिए मृत्यु दण्ड का विधान किया है। चारों वर्णों की स्त्रियाँ धन, संपत्ति, पुत्रादि से भी बढ़कर सर्वदा रक्षणीया हैं—"चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा॥"[25] भार्या से रहित गृह को जंगल के समान कहा गया है और असहाय स्त्री की जिम्मेदारी समाज पर थी। स्त्री की रक्षा में प्रयत्नशील पुरुष अपने चरित्र, कुल, आत्मा और धर्म की रक्षा करता है। परस्त्री को मातृवत् समझना चाहिए। मनु ने सती स्त्री की महिमा का बखान और दुष्टा स्त्री की निन्दा की है। मनु ने संभोग की इच्छा नहीं करती हुई कन्या के साथ बलात् संभोग करके उसे दूषित करने वाले के लिए मृत्यु दण्ड का विधान किया है—

"योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति।"[26]

इसी के साथ यदि कोई कन्या या स्त्री भी किसी कन्या/स्त्री को दूषित करे तो उसके लिए भी दण्ड का विधान किया गया है। मनु ने कुलीन स्त्रियों का हरण करने वालों के लिए प्राणदण्ड का विधान एवं कन्या-विक्रय का निषेध किया है तथा माता,

पिता, स्त्री और पुत्र को अत्याज्य कहा है और इनको त्यागने वाले के लिए दण्ड का विधान किया है—

"न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति।
त्यजन्नप्रतितानेतान् राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्॥"[27]

मनु स्त्रियों के लिए आत्मसंयम और आत्मरक्षा की पैरवी करते हुए कहते हैं कि यदि स्त्रियाँ धर्म विरुद्ध बुद्धि होने से संयम एवं आत्मरक्षा का भाव न रखें तो आप्तवचन एवं आज्ञाकारी पुरुषों के द्वारा घर में निरुद्ध की जाने के बाद भी असुरक्षित होती हैं। जो स्त्रियाँ धर्मानुकूल बुद्धि होने से संयम और आत्मरक्षा के भाव से युक्त होती हैं, वे सुरक्षित रहती हैं—

"अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः॥"[28]

मनु के अनुसार स्त्री को मादक द्रव्यों का पान, दुष्टों का संसर्ग, पति-वियोग, व्यर्थ इधर-उधर विचरण, परगृह में निवास, असामयिक शयन आदि षड्दोषों के विषय में सदैव बचना चाहिए। स्त्री जिस प्रकार के गुण-स्वभाव वाले पुरुष से विवाहित होती है, वह समुद्र में मिलने वाली नदी के समान वैसे ही गुण- स्वभाव वाली हो जाती है अर्थात् यदि उसका पाणिग्रहण संस्कार सद्गुणी पुरुष से हो तो वह भी सद्गुणी हो जाती है और दुर्गुणी से हो तो वह भी दुर्गुणी हो जाती है, जैसे नदी समुद्र के पानी का गुण ग्रहण करके खारी या मीठी हो जाती है—

"यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्यते यथाविधि।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगाः॥"[29]

उदाहरणस्वरूप अधमयोनि में उत्पन्न होकर भी 'अक्षमाला' नाम की स्त्री वशिष्ठ से और 'शारङ्गी' नामकी स्त्री मन्दपाल नामक ऋषि से विवाहित होकर पूज्यता को प्राप्त हुई।

नवम अध्याय में स्त्री के अधिकारों एवं कर्तव्यों का विशद् विवेचन किया गया है। स्त्री की महत्ता को अङ्गीकार करते हुए मनु उसके कर्तव्यों को इङ्गित करते हुए कहते हैं कि संतान को उत्पन्न करना, उसका पालन-पोषण करना, अग्निहोत्र, यज्ञादि धर्मकार्य, प्रतिदिन का अतिथि सत्कार—भोजनादिरूप गृहप्रबंधन का लोक-व्यवहार, परिवार के गुरुजनों की शुश्रूषा, श्रेष्ठ रतिकर्म एवं पितरों का तथा स्वयं का स्वर्गगमन- यह सब स्त्री के ही अधीन रहता है। मनु ने स्त्री-पुरुष की सहधर्मिता एवं साहचर्य को सिद्ध करते हुए कहा है कि स्त्री धान्य बोने के लिए क्षेत्रस्वरूपा और पुरुष धान्यादि के बीजस्वरूप है। क्षेत्र और बीज के संसर्ग से ही सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है—

"क्षेमभूतसमा नारी, बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
क्षेमबीजसमायोगा, सम्भवः सर्वदेहिनाम्॥"[30]

कहीं बीज प्रधान है तो कहीं क्षेत्र। जहाँ बीज और क्षेत्र दोनों समान हैं, वहाँ उत्तम संतान की उत्पत्ति मानी गई है। मनु विधवा या जिसका पति सन्तानोत्पत्ति में अक्षम है, उस स्त्री में नियोग से सन्तानोत्पत्ति के पक्षधर हैं। साथ ही, पति की मृत्यु हो जाने पर पति के सहोदर छोटे भाई अर्थात् स्त्री के देवर से पुनर्विवाह के पक्षधर हैं।

मनु के कथनानुसार निषिद्ध मद्यपान करने वाली, दुराचार वाली, पति के प्रतिकूल रहने वाली, असाध्य रोगिणी, धन का अपव्यय करने वाली स्त्री का परित्याग करके पुरुष दूसरा विवाह कर ले, यह उचित है। यहाँ स्त्री के सदाचारिणी होने पर बल दिया है तो अन्यत्र स्त्री के पक्ष में यह भी कहा है कि ऋतुमती होने पर भी कन्या भले ही जीवनपर्यंत पिता के घर में ही रह जाए, परंतु पिता उस कन्या का गुणहीन वर के लिए कदापि कन्यादान ना करे—

"काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥"[31]

साथ ही, विवाह किए हुए स्त्री-पुरुष को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि वे परस्पर धर्मार्थकामविषयक कार्यों में पृथक् ना होवे, उनमें अलगाव ना होवे। यहाँ मनु स्त्री-पुरुष को धर्मार्थकामविषयक कार्यों एवं गृहस्थ जीवन के दायित्वों के निर्वहन में परस्पर सामंजस्य रखते हुए विवाह-विच्छेद ना करने की सलाह दे रहे हैं। साथ ही, माता, बहन एवं पुत्री के साथ कभी भी एकान्त में न रहने की सलाह देते हैं क्योंकि बलवान् इन्द्रिय समूह विद्वान् को भी अपने वश में कर लेता है—

"मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनोभवेत्।
बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वान्समपि कर्षति॥"
(मनुस्मृति 2.215)

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में उक्त सिद्धान्तों की समसामयिकता, सार्थकता एवं प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है।

निष्कर्ष

मनुस्मृति में स्त्री का चित्रण प्राचीन भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था का समग्र और जटिल प्रतिबिंब प्रस्तुत

करता है। महर्षि मनु ने स्त्री को परिवार की आधारशिला तथा सामाजिक समृद्धि का सूचक माना है, जैसा कि प्रसिद्ध श्लोक "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः" (3.56) में व्यक्त है। इसमें स्त्री को गृहस्वामिनी, पत्नी, माता एवं समाज की नैतिक शक्ति के रूप में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। संपत्ति में अधिकार, सुरक्षा, सम्मान तथा पति द्वारा पूज्यभाव से व्यवहार के प्रावधान, स्त्री-गरिमा को रेखांकित करते हैं।

तथापि, मनुस्मृति स्त्री को आजीवन संरक्षण की आवश्यकता वाली मानती है—बाल्यकाल में पिता, युवावस्था में पति एवं वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन। यह दृष्टिकोण स्त्री की स्वतंत्रता को सीमित करता है तथा उसके स्वभाव को कभी-कभी चंचल एवं नियंत्रण योग्य बताकर लैंगिक असमानता को तर्कसंगत ठहराता प्रतीत होता है। ये प्रावधान उस काल की सामाजिक-सुरक्षा संबंधी चिंताओं से उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं।

उक्त अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति काल-विशेष की ऐतिहासिक-सामाजिक वास्तविकता को प्रतिबिंबित करती है, न कि सार्वभौम या शाश्वत सत्य। इसमें स्त्री-सम्मान, स्त्री-सुरक्षा एवं कल्याण के प्रावधान प्रगतिशील हैं, जबकि अधीनता सम्बन्धी दृष्टिकोण आधुनिक लैंगिक-समानता एवं स्वायत्तता के आदर्शों से भिन्न हैं। पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री को अवसर की समानता के लिए संघर्ष करना पड़ा है और इसी कारण उसके लिए विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण की व्यवस्था करके समान अवसर प्रदान करने की कोशिश की गई है और स्त्री, समाज की मुख्य धारा में पुरुष के समान अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है। इस हेतु समाज को 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' जैसी भावना को त्यागना ही पड़ेगा।

आज के संदर्भ में मनुस्मृति का आलोचनात्मक अध्ययन न केवल प्राचीन भारतीय नारी-दृष्टि को समझने में सहायक है, बल्कि लैंगिक-न्याय, सामाजिक परिवर्तन एवं सांस्कृतिक निरंतरता की दिशा में भी उपयोगी दृष्टि प्रदान करता है। मनुस्मृति पूर्णतः न तो स्त्री-विरोधी है और न ही आधुनिक अर्थों में समानतावादी; इसे तत्कालीन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, जयदेव, ऋग्वेद संहिता, आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड, अजमेर, 1952, (10.85.36)
2. उपर्युक्त, 10.85.46
3. उपर्युक्त, 10.85.33, एवं सातवलेकर दामोदर, अथर्ववेद संहिता, स्वाध्याय मंडल पारडी, सूरत, 1958, (14.2.28)
4. शास्त्री, डॉ. रामचंद्र वर्मा, मनुस्मृति, विद्या विहार प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ.सं. 109 (3.56)
5. शास्त्री, हरगोविंद, मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण-षष्ठ, 1998, पृ.सं. 14 (1.32)
6. सातवलेकर दामोदर, अथर्ववेद संहिता, स्वाध्याय मंडल पारडी, सूरत, 1958, (11.5.18)
7. शास्त्री, हरगोविंद, मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण-षष्ठ, 1998, पृ.सं. 459 (9.11)
8. कल्याण, नारी अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1948, पृ.सं. 131
9. शास्त्री, हरगोविंद, मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण-षष्ठ, 1998, पृ.सं. 73 (2.145)
10. उपर्युक्त, पृ.सं. 212 (4.162)
11. उपर्युक्त, पृ.सं. 44 (2.33)
12. उपर्युक्त, पृ.सं. 458 (9.8)
13. उपर्युक्त, पृ.सं. 114 (3.57)
14. उपर्युक्त, पृ.सं. 115 (3.62)
15. उपर्युक्त, पृ.सं. 115 (3.60)
16. उपर्युक्त, पृ.सं. 457 (9.2)
17. उपर्युक्त, पृ.सं. 457 (9.3) एवं पृ.सं. 276 (5.148)
18. उपर्युक्त, पृ.सं. 458 (9.9)
19. उपर्युक्त, पृ.सं. 53 (2.66-67)
20. उपर्युक्त, पृ.सं. 106 (3.25)
21. उपर्युक्त, पृ.सं. 471 (9.65) एवं पृ.सं. 279 (5.162)
22. उपर्युक्त, पृ.सं. 53 (2.67)
23. उपर्युक्त, पृ.सं. 280 (5.165)
24. उपर्युक्त, पृ.सं. 279 (5.162)
25. उपर्युक्त, पृ.सं. 443 (8.359)
26. उपर्युक्त, पृ.सं. 444 (8.364)
27. उपर्युक्त, पृ.सं. 447 (8.381)
28. उपर्युक्त, पृ.सं. 459 (9.12)
29. उपर्युक्त, पृ.सं. 461 (9.22)
30. उपर्युक्त, पृ.सं. 464 (9.33)
31. उपर्युक्त, पृ.सं. 476 (9.89)